12

अनुग्रह से उद्धार

(इफिसियों 2:1-10)

उत्पत्ति 1 और 2 की अपनी चर्चा में हम ने सीखा कि परमेश्वर की विशेषताओं में से एक उसकी अविश्वसनीय सामर्थ है। इफिसियों 3:20, 21 में पौलुस ने इसी विषय को छुआ है:

> अब जो ऐसा सामर्थी है, कि हामरी बिनती और समझ से कहीं अधिक काम कर सकता है, उस सामर्थ के अनुसार जो हम में कार्य करता है, कलीसिया में, और मसीह यीशु में, उस की महिमा पीढ़ी से पीढ़ी तक युगानुयुग होती रहे। आमीन।

पौलुस के अनुसार परमेश्वर किसी भी काम जो हम उसे करने को कहें या उससे कहने का स्वप्न भी देख सकते हैं, करने में सक्षम हैं। पहले 1:19-23 में यह स्पष्ट करते हुए कि ''उसकी सामर्थ की समझ से बाहर महानता हमारी ओर जो विश्वास करते हैं'' होगी, पौलुस ने परमेश्वर की सामर्थ पर टिप्पणी की थी। हमारी निर्बलताओं के बावजूद, परमेश्वर हमारे द्वारा काम करने के योग्य है, यदि हम उसकी इच्छा के आगे अपने आपको सौंप दें। परमेश्वर की सामर्थ का विषय निराशाजनक ढंग से खोए हुए पापियों को बचाने की परमेश्वर की क्षमता की पौलुस की चर्चा में इफिसियों 2:1-10 में जारी रहता है। (2:1 के आरम्भ में ''और'' इस बात को दिखाता है कि ''सामर्थ'' पर चर्चा जारी है।)

नया नियम यह दिखाने में बहुत स्पष्ट है कि यीशु खोए हुए पापियों को बचाने के लिए परमेश्वर का एक और एकमात्र माध्यम है। यूहन्ना 14:6 में यीशु ने स्वयं कहा, ''यीशु ने उस से कहा, मार्ग और सच्चाई और जीवन में ही हूं; बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंच सकता।'' प्रेरितों ने इसी सच्चाई का प्रचार किया: ''और किसी दूसरे के द्वारा उद्धार नहीं; क्योंकि स्वर्ग के नीचे मनुष्यों में और कोई दूसरा नाम नहीं दिया गया, जिसके द्वारा हम उद्धार पा सकें'' (प्रेरितों 4:12)। यूहन्ना ने लिखा कि ''जिसके पास पुत्र है, उसके पास जीवन है; और जिसके पास परमेश्वर का पुत्र नहीं, उसके पास जीवन भी नहीं है'' (1 यूहन्ना 5:12)।

इसलिए सारी मनुष्यजाति केवल दो वर्गों में बंटी है जिसमें एक वर्ग उन लोगों का है जो हमारे पापों के लिए सिद्ध बलिदान, मसीह के लहू के द्वारा उद्धार पाए हुए हैं और दूसरा उन लोगों का है जिनका उद्धार नहीं हुआ बल्कि वे अभी भी खोए हुए और बिना क्षमा के हैं।

''तुम अपने पापों में मरे हुए थे। ...''

मसीह से अलग हमारी स्थिति का वर्णन करने में पौलुस ने इतना नहीं कहा कि हम ''खोए हुए'' थे बल्कि उसने कहा कि हम ''मरे हुए'' थे: ''और तुम अपने अपराधों और पापों के कारण मरे हुए थे। जिस में तुम पहिले चलते थे'' (2:1, 2क)। उनकी स्थिति के वर्णन के लिए

जो मसीह के बिना हैं/या थे पौलुस ने मृत्यु जैसी मज़बूत आकृति का इस्तेमाल क्यों किया? किसी प्रियजन की मृत्यु के सबसे परेशान करने वाले परिणामों में से एक यह है कि वह व्यक्ति अब हमारे स्पर्श या हमारी बातों का वैसे जवाब नहीं दे सकता, जैसे वह जीवित रहते समय देता था या थी। मसीह से अलग हम परमेश्वर और हमारे लिए उसकी इच्छा का जवाब नहीं देते जिस कारण वास्तव में हम मरे हुए होते हैं। दूसरा, मुर्दा लोग बिल्कुल असहाय हैं। मरे हुए लोग केवल मुर्दा हैं यानी वे अपने अस्तित्व को बढ़ाने या अपनी स्थिति को बदलने के लिए कुछ नहीं कर सकते। बिना मसीह के अपने खोए होने की स्थिति को सुधारने में हम भी उतने ही असहाय हैं। इसलिए यह कहना बिल्कुल वाजिब है कि बिना मसीह के हम ''मरे हुए'' हैं।

आत्मिक मरे हुए होने का विवरण जारी रखते हुए पौलुस ने आगे कहा, कि आत्मिक मुर्दे ''अपने अपराधों और पापों'' के कारण मरे हुए हैं। पौलुस ने कहा कि कभी हम ''इन पापों में चलते'' (आदतन जीते) थे। ऐसा करके हम ''इस संसार की रीत पर'' (''इस संसार के ढंगों से; NIV'') और ''आकाश के अधिकार के हाकिम अर्थात उस आत्मा के अनुसार चलते थे, जो अब भी आज्ञा न मानने वालों के कार्य करता है'' (2:2)। यह केवल शैतान के लिए ही कहा जा सकता है जिसे किसी समय लगता था कि वह पृथ्वी के ऊपर के वातावरण में रहने वाली कुछ आत्माओं के ऊपर शासन कर सकता है। बाद में पौलुस ने मसीही लोगों को सलाह दी, ''परमेश्वर के सारे हथियार बान्ध लो; कि तुम शैतान की युक्तियों के साम्हने खड़े रह सको'' (6:11)। ''उन सब के साथ विश्वास की ढाल लेकर स्थिर रहो जिस से तुम उस दुष्ट के सब जलते हुए तीरों को बुझा सको'' (6:16)। कुरिन्थियों के नाम लिखते हुए पौलुस ने शैतान को ''इस संसार का परमेश्वर'' (2 कुरिन्थियों 4:4) बताया था। जब हम परमेश्वर के अधिकार को जिसने हमें बनाया है नकारते हैं तो हम ''इस संसार के ईश्वर'' के पीछे चल रहे होते हैं, चाहे हमारी ऐसी मंशा हो या नहीं।

ईश्वर रहित जीवन शैली के बारे में पौलुस का और भी कहना था: ''इनमें हम भी सब के सब पहिले अपने शरीर की लालसाओं में दिन बिताते थे, और शरीर, और मन की मंशाएं पूरी करते थे, और और लोगों के समान स्वभाव ही से क्रोध की सन्तान थे'' (2:3)। ''शरीर'' की लालसाओं को मानने का अर्थ स्वार्थपूर्ण ढंग से काम करने और परमेश्वर के ढंग के बजाय अपने तरीके से चलने की मानवीय प्रवृति के आगे झुकना है। जब हम शरीर और मन की इच्छाओं के पीछे चलते हैं तो हम परमेश्वर की इच्छा और अपने व्यवहार के विनाशकारी स्वभाव को नज़रअन्दाज़ करते हैं। पौलुस ने यह नहीं कहा कि मसीह के बिना हम में से ''कुछ लोगों'' का जीवन ऐसा था बल्कि उसने कहा कि यह बात ''सब'' लोगों के लिए है। मसीह के बिना हम में से हर कोई परमेश्वर के क्रोध के अधीन होगा। हम ''क्रोध की सन्तान'' होंगे यानी वे लोग जिनकी पहचान ही क्रोध है।

आत्मिक क्रोध की तीन मुख्य विशेषताएं: छल (क्योंकि हमें लगता है कि हम सुरक्षित हैं पर हम हैं नहीं) ''आज्ञा न मानना'' (क्योंकि हम अपनी इच्छाओं को मानने के लिए परमेश्वर की इच्छा से दूर जा रहे हैं) और ''विनाश'' (क्योंकि अन्तिम परिणाम परमेश्वर के क्रोध का सामना करना है)। यीशु के आने से पहले हर किसी के द्वारा सामना किया जाने वाली यह खतरनाक दशा यह पूरी तरह से आशाहीन लगती है। जब तक हम आगे नहीं बढ़ते।

''परन्तु परमेश्वर ने ...।''

आयत 4 का आरम्भ उनसे ''परन्तु परमेश्वर ने,'' शब्दों के साथ होता है जो शायद बाइबल के वह सबसे महत्वपूर्ण शब्द हैं। बाइबल का विषय परमेश्वर है, और यीशु ने कहा कि ''परन्तु परमेश्वर से हो सकता है; क्योंकि परमेश्वर से सब कुछ हो सकता है'' (मरकुस 10:27)। यदि यह परमेश्वर के लिए न होता होता तो हम सब निराशाजनक ढंग से दोषी ठहरते। जहां पौलुस ने ज़ोर दिया कि उद्धार ऐसी चीज़ नहीं है जिसे हम अपने आप अनुमान लगा सकते या पा सकते हैं। यह पूर्णतया परमेश्वर की पहल के कारण है।

उसने परमेश्वर को ''दया का धनी और उस बड़े प्रेम के कारण जिससे उसने हम से प्रेम किया'' काम करने वाला बताया। अपनी दया और प्रेम के कारण उसने हमें मसीह के साथ जिलाया, मसीह के साथ जीवित किया और स्वर्गीय स्थानों में उस ''मसीह'' के साथ बिठाया है। इस सारी शानदार गतिविधि का लक्ष्य यह परमेश्वर के ''असीम धन'' और ''मसीह यीशु में'' उसकी दयालुता को दिखाना है (आयत 7)। अन्य शब्दों में परमेश्वर ने हमें अपने पुत्र के साथ मिलाया है, जो मर गया और फिर जी उठा (देखें रोमियों 6:1-5) ताकि हम उसके साथ अनन्त जीवन पाएं।[1] वह आशा जो हमें है हमारी केवल यीशु के कारण और इस कारण हो सकती है कि सुसमाचार के द्वारा हमें उसके साथ मिलाया गया है।

विश्वास के द्वारा ''अनुग्रह ही से''

हम अभी भी चकित हो सकते हैं, क्योंकि हम सभी ऐसे ला-इलाज पापी हैं, परमेश्वर हम पर अपना प्रेम कैसे दिखा सकता है और हमारे पापी होने के प्रभावों को उलट सकता है। पौलुस ने इस प्रश्न का उत्तर बड़ा स्पष्ट दिया।

उसने कहा कि परमेश्वर ऐसा ''अनुग्रह से'' (2:5, 8) करता है। एक लेखक ने ''अनुग्रह'' की परिभाषा इस प्रकार दी:

> अनुग्रह अत्यन्त उदारता, निस्वार्थपन, सहज, अत्यधिक उड़ाउ उदारता है जो पूरी तरह से दूसरे की आवश्यकता के लिए प्रेमपूर्वक लगाव के कारण काम करता है, चाहे वह प्रेम के पूरी तरह से अयोग्य हो और इस प्रकार उसकी सहायता की पेशकश करता है।[2]

इससे भी आसान परिभाषा एक छोटे लड़के द्वारा दी गई थी जिसने कहा, ''अनुग्रह वह है जिसकी आपको आवश्यकता है न कि वह जिसके आप हक्कदार हैं।''

अनुग्रह के दिए जाने का श्रेष्ठ उदाहरण यीशु के ''उड़ाऊ पुत्र के दृष्टांत'' में लूका 15 में मिलता है। इस स्पष्ट और मर्मस्पर्शी कहानी में यीशु ने एक जवान के बारे में बताया जिसने उतावली से अपने पिता से अपना भाग मांग लिया था, अपने पिता की मृत्यु तक प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं था। फिर वह एक ''दूर देश'' में चला गया (आयत 13), जहां उसने आवारा-गर्दी और मौज-मस्ती में जीवन बिताते हुए अपना सब कुछ उजाड़ दिया। भुखमरी कगार पर और जीवित रहने के लिए सूअरों का खाना खाते हुए उसे होश आया और उसने अपने पिता के पास लौट जाने का निश्चय किया। उसकी योजना पुत्र कहलाने के अयोग्य होने को मानने और भाड़े मज़दूर के रूप में स्वीकार किए जाने को कहने की थी। इस प्रकार कम से कम इस प्रकार वह

अपने आपको भुखमरी से बचा सकता था। इस बात को पूरी तरह से समझते हुए कि उसके पास ऐसा कोई आधार नहीं है जिससे वह अपने पिता के कठोर व्यवहार को छोड़ किसी और बात की उम्मीद करे, वह घर लौट गया। इसके विपरीत, यीशु ने कहा कि उसके पिता ने उसे जब ''वह अभी दूर ही था'' (आयत 20) देखा, इस कारण जब से वह गया था तब से वह उसकी राह देख रहा था! पिता ने भागकर उसे चूमा। पुत्र को अपने स्पष्ट अयोग्य होने की बात कहने का अवसर ही नहीं मिला, क्योंकि उसका पिता उसकी वापसी का जश्न मनाने को इतना उत्सुक था उसके उड़ाऊ पुत्र को एक धनवान व्यक्ति के पुत्र को पहनाए जाने वाले वस्त्र पहनाए, आज्ञा दी कि उसकी उंगली में छाप वाली अंगूठी पहनाई जाए और घोषणा की कि उसके पुत्र के सम्मान में एक भोज तैयार किया जाए। दिलचस्प बात है कि उसने उसी शब्द का इस्तेमाल किया जिसका बाद में पौलुस ने उन सब लोगों की स्थिति के वर्णन के लिए किया जो परमेश्वर से दूर हैं: ''क्योंकि मेरा यह पुत्र *मर गया* था, फिर जी गया है'' (लूका 15:24क; देखें आयत 32)। यहां पौलुस के शब्द ''अनुग्रह'' का पूर्ण उदाहरण मिलता है, चाहे लूका 15 में इस शब्द का इस्तेमाल नहीं हुआ: एक प्रेमी पिता जो एक भटके हुए बालक को जो ताड़े जाने और ठुकराए जाने के योग्य था, आनन्द से वापस ग्रहण कर लेता है।

इफिसियों 2:4-10 में पौलुस ने अनुग्रह के दो आवश्यक गुणों का वर्णन किया। इन गुणों के बिना ''अनुग्रह'' अनुग्रह नहीं होना था।

परमेश्वर का अनुग्रह मुफ्त है

पहले तो यह कि अनुग्रह नि:शुल्क है। पौलुस ने हमारे उद्धार को ''परमेश्वर का नाम'' कहा (2:8ख)। इस पर और बल देने के लिए उसने ज़ोर दिया कि यह हमारी कोई प्राप्ति नहीं है: ''न कर्मों के कारण, ऐसा न हो कि कोई घमण्ड करे'' (2:9)। यदि उद्धार अपने प्रयासों से कमाया जा सकता तो यह अनुग्रह से नहीं होना था। फिर यीशु की मृत्यु किसी काम की न होती (गलातियों 2:21)।

जीवन की बहुत सी बातें वास्तव में ''नि:शुल्क'' नहीं होती। कई बार बीमा पॉलिसी में देरी से अदायगी की अनुमति देने के लिए ''ग्रेस पीरियड'' की बात लिखी होती है। इसका अर्थ यह है कि उस महीने के लिए बीमा की किस्त न दिए जाने के बावजूद एक निश्चित अवधि तक पॉलिसी लैप्स नहीं होती। यह अनुग्रह जैसा लग सकता है, पर है नहीं। वास्तव में यह ''मृत्यु पर रोक'' जैसा अधिक है क्योंकि यह केवल एक सीमित समय के लिए है और ''ग्रेस पीरियड'' के खत्म होने तक किस्त न चुकाने पर पॉलिसी पूरी तरह से लैप्स हो जाती। इसके विपरीत मसीह में परमेश्वर द्वारा दिया गया उद्धार सचमुच मुफ़्त है। इस सच्चाई को समझाने के लिए, अपने आप से निम्न प्रश्न पूछें: ''परमेश्वर को मेरे लिए अपने पुत्र को क्रूस पर मरने भेजने के लिए प्रेरित करने हेतु मैंने क्या किया?''; ''क्रूस पर यीशु के मरने का कारण बनने में मेरा क्या योगदान है जिससे मेरा उद्धार हो?''; ''क्या सुसमाचार के संदेश को बनाने में मेरे किसी प्रयास से सहायता मिली है जिससे मुझे परमेश्वर के प्रेम और उद्धार की पेशकश ... या कलीसिया की स्थापना ... या पवित्र शास्त्र की प्रेरणा देने का पता चले? मैंने स्वर्ग के द्वार खोलने के लिए क्या किया है?'' यह स्पष्ट हो जाना चाहिए क्योंकि इन सभी प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट है, ''कुछ नहीं!'' हमारा उद्धार

सचमुच में ''अनुग्रह से'' होता है।

हमें परमेश्वर के अनुग्रह के तथ्य को स्वीकार करना और फिर भी यह मानना कठिन लग सकता है कि वास्तविकता में हमें अपने आपको बचाना आवश्यक है। हम उस जवान की तरह हैं जिसने यीशु के पास आकर पूछा था, ''हे गुरु; मैं कौन सा भला काम करूं, कि अनन्त जीवन पाऊं?'' (मत्ती 19:16)। स्पष्टतया उसका मानना था कि कोई ऐसा बड़ा काम है जिसे वह कर सकता है जिससे उसे स्वर्ग में उसके प्रवेश की गारन्टी मिल जाए। जैसा कि यीशु ने उसे दिखाया, वह बात को बिल्कुल नहीं समझ रहा था। उसकी तुलना मत्ती 18:23-35 वाले सेवक से भी की जा सकती है, जिसने अपने स्वामी के ''दस हज़ार तोड़े'' (एक आम मज़दूर की 1,50,000 साल की मज़दूरी जितना) देने थे; तौभी उसने कहा, ''हे स्वामी, धीरज धर, मैं सब कुछ भर दूंगा'' (आयत 36)। कितनी बेतुकी बात है! इतना बड़ा कर्ज़ कोई नहीं चुका सकता था! स्पष्टतया वह चुका नहीं सकता था, पर यीशु ने कहा, ''तब उस दास के स्वामी ने तरस खाकर उसे छोड़ दिया, और उसका उद्धार क्षमा किया।'' फिर, यीशु ने ''अनुग्रह'' शब्द का इस्तेमाल नहीं किया, पर उसकी कहानी में इसके अर्थ की समझ स्पष्ट मिलती है।

हमें परमेश्वर के अनुग्रह की वास्तविकता को स्वीकार करना इतना कठिन क्यों लगता है? इसके कई सम्भावित कारण हैं।

1. हम उसी की उम्मीद करते हैं जिसके हम हक्कदार होते हैं। छोटे बच्चों के रूप में आरम्भिक वाक्यों में से एक हमें ''अच्छी बात नहीं है!'' सुनने को मिलते हैं। हम उसे पाने पर ज़ोर देते हैं जो हमें लगता है कि हमारा है। जब किसी खिलौने पर झगड़ा या नौकरी में तरक्की के अनुमान की बात हो तो यह सही हो सकता है पर क्षमा पाने की आवश्यकता पर बात करना आरम्भ करने पर यह दिक्कत देने वाला है। न्याय के दिन जब हम परमेश्वर के सामने खड़े हों, तो अन्तिम बात जिसे हम जो चाहेंगे वह वही है जिसके हम हक्कदार हैं! हम उसकी लालसा करेंगे जिसकी हमें *आवश्यकता* है यानी उसके अनुग्रह की।

2. हम अपने पापी होने की गम्भीरता को समझते नहीं। यदि हम पाप को समय-समय पर की जाने वाली ''गलतियां'' ही मानते हैं तो हमें परमेश्वर के अनुग्रह की समझ या आवश्यकता का पता नहीं है। हम पाप के छोटे से घाव को न देखें जिसे हम स्वयं ही ठीक कर सकते हैं। उस बड़े डॉक्टर की सहायता मांगने को छोड़ यदि हम अपने आपको वैसे देख पाएं जैसे परमेश्वर हमें देखता है, तो हम यह समझ जाएंगे कि उद्धार केवल अनुग्रह के द्वारा हो सकता है। पौलुस के अनुसार अनुग्रह के बिना ''पाप में मरे हुए'' थे। अनुग्रह ही हमारी एकमात्र आशा है।

3. हम अपने ही दोष के प्रति संवेदनशील हैं। यह पहले बताई गई समस्या का उलट है। अपने आपको हम (परमेश्वर को छोड़) और किसी से भी बेहतर जानते हैं, हमें यह पता हो सकता है कि हम वास्तव में कितने पापी हैं-शायद वैसे जैसे दूसरे लोग नहीं देखते। इस बात को समझते हुए हमारे लिए यह मानना कठिन है कि परमेश्वर, जो हमारी हर बात को जानता है, हम पर अपना अनुग्रह कैसे कर सकता है। हम इसके योग्य नहीं हैं। इसी कारण इसे ''अनुग्रह'' कहा जाता है। परमेश्वर यीशु के द्वारा हमें वह देने की पेशकश करता है जिसकी हमें सबसे अधिक आवश्यकता है पर हम उसे अपने आप नहीं पा सकते।

4. हमारे पास या हमें परमेश्वर के स्वभाव का असन्तुलित विचार है। अपनी पृष्ठभूमियों

के अनुसार हमें परमेश्वर की अलग-अलग समझ पैदा कर ली है जो आवश्यक नहीं कि उसके विषय में बाइबल की बात से सहमत हों। कुछ लोग परमेश्वर को एक कठोर न्यायी के रूप में दिखाते हैं जिसका मुख्य लक्ष्य हमारी कमियां निकालना है। जिससे वह हमें दोषी ठहरा सकें। इससे बढ़कर सच्चाई से दूर होने की बात नहीं हो सकती! बाइबल बताती है कि ''परमेश्वर प्रेम'' (1 यूहन्ना 4:8) और ''यह चाहता है, कि सब मनुष्यों का उद्धार हो'' (1 तीमुथियुस 2:4)। बेशक परमेश्वर मन न फिराने वाले और विश्वास न करने वालों का न्याय करेगा पर हमें वह बचाना चाहता है। वरना वह हमारे पापों के लिए मरने को संसार में अपने पुत्र को क्यों भेजता?

5. हम क्षमा न करने वाले अपने मानवीय सम्बन्धों को परमेश्वर को दे देते हैं। जिनका पालन पोषण ऐसे लोगों में हुआ है जो क्षमा नहीं करते, उन्हें यह मानना कठिन लगेगा, विशेषकर परमेश्वर के लिए कि वह क्षमा करने वाला हो सकता है। जो लोग दूसरों को क्षमा नहीं करते हैं उन्हें यह कल्पना करना कठिन लग सकता है कि परमेश्वर उनके जैसा नहीं है, पर वह उनके जैसा नहीं है। वह क्षमा करना चाहता है और क्षमा करता है! वह अपने बच्चों को अपने अनुग्रह से क्षमा करेगा।

6. परमेश्वर की सेवा करने के पीछे हमारी प्रेरणा गलत है। भली मंशा वाले लोगों ने हम में से कइयों को यकीन दिलाया हो सकता है कि परमेश्वर की सेवा के लिए हमारा पहला उद्देश्य वह दोष होना चाहिए जो हम अपने पापों के लिए महसूस करते हैं, या वह दोष जो हम वह न कर पाने पर पाएंगे जो परमेश्वर हम से करवाना चाहता है। सच्चाई यह है कि दोष की भावना परमेश्वर की सेवा करने और उसकी आज्ञा मानने का निर्णय लेने की ओर केवल एक छोटा सा कदम है। इससे भी कहीं अधिक सामर्थी और प्रेरणादायक अनुग्रह यानी हमारे पापों को क्षमा करने की परमेश्वर की इच्छा और हमारे लिए मरने की यीशु की इच्छा ताकि हमें क्षमा मिल सके, के लिए हमारा आभार है। परमेश्वर के अनुग्रह में विश्वास करना प्रभु के वफ़ादार सेवक बनाने में दोष से कहीं बढ़कर प्रभावकारी है।

7. हमें लगता है कि हमें सब कुछ सही या सही करना आवश्यक है वरना! ''सिद्धता'' वह बात है जिससे हम परमेश्वर को तब तक स्वीकार्य नहीं हो सकते जब तक हम अपने जीवनों में से पाप को पूरी तरह निकाल न दें। यानी घटनाओं को अति गम्भीर ढंग से बीच में से निकालना! क्रूस के द्वारा परमेश्वर हमें वैसे ही ग्रहण करता है जैसे हम हैं और हमारे पापों को हटा देता है। इसी प्रकार से ''हठधर्मिता'' वह विचार है कि हमें उद्धार पाने के लिए विश्वास करना और *बिल्कुल वैसे* करना आवश्यक है जैसे परमेश्वर चाहता है। हर मसीही का लक्ष्य पूर्णतया परमेश्वर को भाना होना चाहिए, पर हमें वास्तविकता में रहना आवश्यक है कि हम उस हद तक परमेश्वर को प्रसन्न करने के अयोग्य हैं। हम सभी पाप करते हैं और कई बार गलतियां करते हैं। हमें परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर रहना आवश्यक है न कि ''सब कुछ सही करने'' की झूठी आशा पर। (याकूब 2:10 इस प्रकार से अपने आपको बचाने की निराशाजनक कोशिश करने को दिखाता है।)

यदि अनुग्रह नि:शुल्क या मुफ़्त नहीं है, तो यह ''अनुग्रह'' है ही नहीं। इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए हमें अपनी सोच को अनुशासित करना आवश्यक है; पर अनुशासित कर लेने के बाद हमें परमेश्वर की ओर से अद्‌भुत आशीष मिलती है।

परमेश्वर का अनुग्रह बहुतायत में है

अनुग्रह का दूसरा आवश्यक गुण बहुतायत है। इफिसियों 1:7, 8 में पौलुस ने लिखा कि परमेश्वर ने हमारे ऊपर अपना अनुग्रह ''बहुतायत से किया।'' 2:4 में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर ''दया का धनी'' है और आयतें 6 और 7 उसके ''असीम धन'' की बात करती है। अनुग्रह को समझने के लिए इसकी आवश्यकता क्यों है? क्योंकि इसका अर्थ यह है कि हमारे पापों की सीमा या प्रकृति चाहे जैसी भी हो, परमेश्वर क्षमा करने को तैयार है और योग्य है। परमेश्वर ''भले लोगों'' के लिए ही नहीं जो यदा कदा चीज़ों को मिला देते हैं। यह पापियों के लिए, बल्कि सब पापियों के लिए है। 1 तीमुथियुस 1:15 में पौलुस ने कहा कि ''मसीह यीशु पापियों का उद्धार करने के लिए जगत में आया, जिन में सब से बड़ा [बुरा] मैं हूं।'' इससे पहले उसने बताया था कि पहले किस प्रकार उसने परमेश्वर की निन्दा की और मसीह को सताया और उसका अपमान किया था, फिर भी उसने कहा कि उसके ऊपर ''हमारे प्रभु का अनुग्रह बहुतायत से हुआ'' (1 तीमुथियुस 1:14)। क्यों? परमेश्वर ने अपना अनुग्रह देने के लिए केवल पौलुस को क्यों चुना? पौलुस ने बताया:

> पर मुझ पर इसलिए दया हुई, कि मुझ सबसे बड़े पापी में यीशु मसीह अपनी पूरी सहनशीलता दिखाए, कि जो लोग उस पर अनन्त जीवन के लिए विश्वास करेंगे, उन के लिए मैं एक आदर्श बनूं (1 तीमुथियुस 1:16)।

अन्य शब्दों में, परमेश्वर ने पौलुस को इसलिए बचाया ताकि कोई यह न कह सके कि ''मैं उद्धार की आशा से परे हूं।'' हम परमेश्वर की क्षमा करने की सामर्थ से परे पाप नहीं कर सकते! उड़ाउ पुत्र के अपने पिता के पास वापस आने पर किसी सफ़ाई की आवश्यकता नहीं थी। यह बात कि वह एक पापी था पहले ही साबित हो चुकी थी। महत्व इस बात का नहीं था कि उसने क्या किया, इसका था कि वह घर लौट आया था।

अनुग्रह निःशुल्क भी है और बहुतायत में भी। इसीलिए मसीही संदेश को ''सुसमाचार'' कहा जाता है। क्योंकि यह शुभ समाचार है!

''विश्वास के द्वारा''

अनुग्रह निःशुल्क है और बहुतायत में, पर यह सस्ता नहीं है। सुसमाचार के संदेश के द्वारा अनुग्रह सब को दिया जाता है पर इसे स्वीकार किया जाना आवश्यक है। जो कुछ परमेश्वर अपने पुत्र के द्वारा देने की पेशकश करता है वह पौलुस ने वही बताया जब उसने कहा कि हमारा उद्धार ''विश्वास के द्वारा'' और ''अनुग्रह ही से'' हमारा उद्धार होने की बात की।

फिर, उड़ाऊ पुत्र की कहानी एक अच्छा उदाहरण है। उसे घर लौटने का निर्णय करने से भी पहले उसके पिता द्वारा स्वीकार कर लिया गया था (यह अनुग्रह है)। ''जब तक वह घर लौटने से इनकार करता रहा तब तक वह मरा हुआ था! बहुत ही वास्तविक अर्थ में मसीही व्यक्ति जो पिता के पास घर लौट आता है और उसके अनुग्रह को पाता है और प्रेम पूर्वक और आनन्द से उसकी सेवा करता है, उड़ाऊ ही है।'' पौलुस ने यह तो ज़ोर दिया कि काम हमारे उद्धार का कारण नहीं पर उसने यह भी ज़ोर दिया कि वे इसका परिणाम हैं: ''क्योंकि हम उसके बनाए

हुए हैं; और मसीह यीशु में उन भले कामों के लिए सृजे गए जिन्हें परमेश्वर ने पहिले से हमारे करने के लिए तैयार किया'' (2:10)। अच्छे कामों में ''चलने'' का अर्थ है कि वे जीवन का हमारा ढंग बन गए हैं।

विश्वास के कई पहलुओं को नज़रअन्दाज़ न किया जाए। इनमें से एक पहलू भरोसा है। ''यीशु में विश्वास करना'' अर्थात परमेश्वर के पुत्र और हमारे उद्धारकर्त्ता के रूप में उसकी पहचान को मानना है, पर इसमें यह भरोसा करना भी है कि उसके लहू में हमें शुद्ध करने और हमें जीवन देने की सामर्थ है, जैसा कि वचन कहता है कि इसमें है। ''विश्वास'' करने का अर्थ यह भरोसा रखते हुए कि परमेश्वर की प्रतिज्ञाएं हमारे लिए और हम में पूरी होंगी, अपने आपको उसके हाथों में देना है। सुसमाचार पर विश्वास करने का अर्थ है कि हम यानी हमारे तन मन को उसकी आवश्यकता है जो मसीह ने हमें खरीदने के लिए मरा। यदि हम सचमुच में विश्वास करते हैं, तो हम अपने पापपूर्ण जीवन को त्यागकर परमेश्वर के आज्ञाकार बच्चों की तरह जीना आरम्भ करेंगे। पिन्तेकुस्त के दिन पतरस के सुनने वालों ने पूछा था, ''हे भाइयों हम क्या करें?'' (प्रेरितों 2:37)। पतरस का जवाब आज्ञा और प्रतिज्ञा दोनों रूप में था: ''पतरस ने उन से कहा, मन फिराओ और तुम में से हर एक अपने-अपने पापों की क्षमा के लिए यीशु मसीह के नाम से बपतिस्मा ले; तो तुम पवित्र आत्मा का दान पाओगे'' (2:38)। मसीह में जीवन का आरम्भ आज्ञापालन के साथ होता है और मसीही व्यक्ति मरने तक आज्ञा मानते हुए वफ़ादारी से जीवन व्यतीत करता है। (देखें इब्रानियों 5:7-10; मत्ती 7:21-27; प्रकाशितवाक्य 2:10.)

वास्तव में विश्वास की कुछ प्रसिद्ध धरणाएं वास्तव में स्पष्ट विकार हैं। विश्वास केवल परमेश्वर के बारे में विचार नहीं है, जैसा कोई ''अनिश्चित्ता में परमेश्वर में विश्वास करता है'' और ''विश्वास'' होने का दावा करता है। याकूब ने अपने कुछ पाठकों को जिन्हें ऐसा ''विश्वास'' था डांटा था: ''तुझे विश्वास है कि एक ही परमेश्वर है: तू अच्छा कहता है''-पर उसने आगे कहा, ''दुष्टात्मा भी विश्वास रखते, और थरथराते हैं'' (याकूब 2:19)। किसी दुष्टात्मा का उद्धार कभी ''विश्वास'' के द्वारा नहीं हुआ। विश्वास ऐसी बात नहीं है जो अन्दर ही अन्दर (मन में) हो। विश्वास का आरम्भ ''हमारे मन में'' होना चाहिए पर जब तक यह हमारी दिनचर्या को प्रभावित नहीं करता तब तक यह अधूरा है। इब्रानियों 11 कहता है, ''विश्वास ही से हाबिल ने बलिदान चढ़ाया ...''; ''विश्वास ही से नूह ने जहाज़ बनाया ...''; ''विश्वास ही से अब्राहम ... ने आज्ञा मानी''; ''विश्वास ही से अब्राहम ने ... बलिदान किया।'' विश्वास केवल किसी बात पर यकीन करना ही नहीं है बल्कि किसी बात को सच मानने पर *काम करना* है। इसके अलावा विश्वास पवित्र शास्त्र में पाई जाने वाली सही शिक्षाओं को मानना ही नहीं है। बेशक इसमें ऐसा विश्वास शामिल है (जिसे पौलुस ने 1 और 2 तीमुथियुस में ''विश्वास'' कहा है), पर यह वफ़ादारी से और आज्ञापालन वाले जीवन जीने के लिए मानी जाने वाली बात से कहीं आगे निकल जाता है।

''तुम्हारा?''

''क्योंकि विश्वास के ही द्वारा अनुग्रह से ही तुम्हारा उद्धार हुआ है,'' पौलुस ने लिखा (2:8क)। यही महान सच्चाई हम सब के उद्धार को सम्भव बनाती है। यदि यह सच्चाई न होती

तो हमें उद्धार का कोई अवसर न मिलता।

पौलुस किससे बात कर रहा था जब उसने कहा, ''विश्वास के द्वारा अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है'' हमें ध्यान रखना होगा कि वह सामान्य रूप में मनुष्य जाति से बात नहीं कर रहा था। वह उन से बात कर रहा था जो पहले ही से मसीह में विश्वासी थी। इफिसियों की पत्री ''उन पवित्र और मसीह यीशु में विश्वासी लोगों के नाम जो इफिसुस में हैं'' (1:1)। 1:15 में पौलुस ने ''उस विश्वास का समाचार सुनकर जो तुम लोगों में प्रभु यीशु पर है और सब पवित्र लोगों पर प्रगट है'' की बात की। 2:1-5 में उसने ''तुम्हें'' का अर्थ स्पष्ट किया जिनके नाम लिख रहा था। ये वे विश्वासी थी, जो किसी समय मरे हुए थे पर अब मसीह यीशु के द्वारा जिलाए जा चुके थे।

अच्छी खबर यह है कि पौलुस पृथ्वी के हर सम्भावित विश्वासी से बात कर रहा था। हमारे पाप चाहे कितने भी हों या कैसे भी क्यों न हों अनुग्रह विश्वास से इसे ग्रहण करने वाले सब लोगों के लिए है। परमेश्वर ने एक मंहगा उपहार खरीदा है और वह हर किसी की राह देखता है कि वह इसे स्वीकार करे। हम इनकार कैसे कर सकते हैं?

टिप्पणियां

[1]पौलुस के विचार में इस ज़ोर दिए जाने पर ध्यान देने का एक अच्छा ढंग इफिसियों 1:3-23 को पढ़ते हुए ''मसीह में,'' ''उसमें,'' ''उस प्यारे में,'' या ऐसे वाक्यांश को रेखांकित करते हुए पढ़ना है। [2]सी. एल. मिट्टन, *इफिशियंस,* द न्यू सेंचुरी बाइबल कमैंट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: मार्शल, मौर्गन एंड स्टॉट, 1973), 92.

विश्वास या कर्म: क्या याकूब पौलुस से असहमत था?

अपने पत्रों में (जैसा इफिसियों 2 में है) पौलुस ने कई जगह यह कहने में ज़ोर दिया कि उद्धार विश्वास के कारण होता है न कि कर्मों के द्वारा (उदाहरण के लिए देखें, रोमियों 3:28; गलातियों 2:15-21)।

याकूब 2 में हमें यह शब्द मिलते हैं ''सो तुम ने देख लिया कि मनुष्य केवल विश्वास से ही नहीं, बरन कर्मों से भी धर्मी ठहरता है'' (आयत 24); ''निदान, जैसे देह आत्मा बिना मरी हुई है वैसा ही विश्वास भी कर्म बिना मरा हुआ है'' (आयत 26)। कइयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस विषय पर याकूब और पौलुस की शिक्षाएं अलग-अलग हैं यानी याकूब ने यह सिखाया कि उद्धार कर्मों से होता है जबकि पौलुस ने बताया कि उद्धार केवल विश्वास से मिलता है।

वास्तव में पौलुस और याकूब दोनों दो अलग-अलग विषयों पर चर्चा कर रहे थे। पौलुस इस प्रश्न पर बात कर रहा था कि यहूदी व्यवस्था के कर्मों को मानना (मसीह में विश्वास के अलावा) उद्धार पाने के लिए आवश्यक है या नहीं। याकूब इस पर चर्चा कर रहा था कि उद्धार *कैसे* विश्वास से मिलता है। उसने ज़ोर दिया कि केवल सक्रिय विश्वास (जिसमें विश्वास के काम शामिल हैं) उद्धार दिला सकता है; वरना विश्वास मरा हुआ है। विश्वास के आवश्यक पहलू के रूप में आज्ञापालन पर पौलुस के दिए ज़ोर पर उपयुक्त ध्यान देने पर हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्धार दिलाने वाले विश्वास की प्रकृति का याकूब का विचार पौलुस के विचार से अलग नहीं था। रोमियों 2:6-11 में पौलुस ने लिखा,

[परमेश्वर] हर एक को *उसके कामों के अनुसार* बदला देगा। जो सुकर्म में स्थिर रहकर महिमा, और आदर, और अमरता की खोज में हैं, उन्हें वह अनन्त जीवन देगा। पर जो विवादी हैं, और *सत्य को नहीं मानते,* बरन अधर्म को मानते हैं, उस पर क्रोध और कोप पड़ेगा। और क्लेश और संकट हर एक मनुष्य के प्राण पर जो *बुरा करता है* आएगा, पहिले यहूदी पर फिर यूनानी पर। पर महिमा और आदर और कल्याण हर एक को मिलेगा, *जो भला करता है,* पहिले यहूदी को फिर यूनानी को। क्योंकि परमेश्वर किसी का पक्ष नहीं करता।

पौलुस के समय में (आज के कई लोगों की तरह) बहुत से लोग यह सोचकर कि वह दावा कर रहा था कि उद्धार पाने के लिए लोगों को कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, अनुग्रह और विश्वास के द्वारा उद्धार की उसकी शिक्षा को गलत कहते थे। कइयों ने यह सुझाव देने के लिए कि हमारा उद्धार उस ''मुर्दा विश्वास'' की उसकी किस्म से हो सकता है जिसकी याकूब ने बात की है और हमारे पाप परमेश्वर को और दयालु बनाते हैं। अनुग्रह पर उसकी शिक्षा को गलत तरीके से बताया। जैसा कि रोमियों 2:5-8; 6:1, 2 से स्पष्ट है, पौलुस की ऐसी कोई मंशा नहीं थी।

याकूब शायद विश्वास के रूप में कर्मों की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए पौलुस की शिक्षा के बिगाड़ों का ही जवाब दे रहा था। वह जवाब दे रहा था या नहीं, पर दोनों लेखक स्पष्ट रूप में मानते थे कि विश्वास केवल दिमागी सोच या अन्दरूनी भरोसा नहीं बल्कि सक्रिय रूप में परमेश्वर को जवाब देना है।